ज्ञानी के तो आस्रव का निरोध है

मैं स्वयं शुद्ध चैतन्यघन प्रभु हूँ – ऐसी जिसे प्रतीति हुई है, श्रद्धा हुई है; उस ज्ञानी के सभी भाव ज्ञानमय होते हैं, उसे मिथ्यात्वमय रागभाव नहीं होता। उसके ज्ञानमय भावों से मिथ्यात्व सम्बन्धी राग–द्वेष एवं अज्ञानमय भाव अवश्य ही रुक जाते हैं। देखो, ज्ञानी के ज्ञानमय भाव हैं – ऐसा कहा, ज्ञानवाला नहीं कहा। ज्ञानमय कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानघनस्वरूप चैतन्यबिम्ब प्रभु है। जो अन्तर में त्रिकाल विद्यमान रहता है, उस अभेद की ओर झुकाववाले भाव को ज्ञानमय कहकर अभिव्यक्त किया है। ऐसे ज्ञानमय भावों से अज्ञानमय भाव अवश्य ही रुक जाते हैं, अभावरूप हो जाते हैं।

भाई ! यह तो अध्यात्म की गंभीर बात है, कोई कथा–वार्ता नहीं है। बहुत शान्ति व धीरज से उपयोग को सूक्ष्म करके सावधानी से सुनना चाहिये।

कहते हैं कि जब आत्मा पर की ओर का झुकाव छोड़कर अन्तर में स्व की ओर झुकता है, तब उसके ज्ञानमय भाव होता है तथा अज्ञानमय भाव अर्थात् मिथ्यात्व–राग–द्वेषादि भाव रुक जाते हैं; क्योंकि परस्पर विरुद्धभाव एकसाथ नहीं रह सकते। अस्थिरता संबंधी भावों की यहाँ बात नहीं है, वे तो चारित्र गुण की पूर्णता के अभाव में होते हैं। यहाँ तो यह कहा है कि ज्ञानमय भावों के साथ मिथ्याभावों का एवं मिथ्यात्वमय भावों के साथ ज्ञानमय भावों का परस्पर विरोध है। मिथ्यात्व व मिथ्यात्व संबंधी राग–द्वेष के भाव सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान के भावों में नहीं रह सकते। दोनों ही परस्पर एक दूसरे के विरोधी हैं। ज्ञानमय भाव में अज्ञानभाव का त्रिकाल अभाव है।

अब कहते हैं कि – ज्ञानी के मिथ्यात्व व मिथ्यात्व संबंधी राग–द्वेषरूप आस्रवों का निरोध होता है। भगवान आत्मा को प्रगट करने के लिये अन्तर का पुरुषार्थ चाहिये। कोरी बड़ी–बड़ी बातें करने से कोई बड़ा नहीं बन जाता। अन्तर में ज्ञायक स्वभाव के प्रति पुरुषार्थवाले धर्ममय भाव से अधर्ममय भाव उत्पन्न नहीं होता, इसलिये ज्ञानी के अधर्म का, आस्रव का निरोध है।

ह्न प्रवचनरत्नाकर भाग–5, पृष्ठ–236–237

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 21 245 अंक : 5

प्रवचनसार पद्यानुवाद

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

सुर असुर इन्द्र नरेन्द्र वंदित कर्ममल निर्मलकरन।
वृषतीर्थ के करतार श्री वर्द्धमान जिन शत–शत नमन।।1।।
अवशेष तीर्थंकर तथा सब सिद्धगण को कर नमन।
मैं भक्तिपूर्वक नमूँ पंचाचारयुत सब श्रमणजन।।2।।
उन सभी को युगपत् तथा प्रत्येक को प्रत्येक को।
मैं नमूँ विदमान मानस क्षेत्र के अरहंत को।।3।।
अरहंत सिद्धसमूह गणधरदेवयुत सब सूरिगण।
अर सभी पाठक साधुगण इन सभी को करके नमन।।4।।
परिशुद्ध दर्शनज्ञानयुत समभाव आश्रम प्राप्त कर।
निर्वाणपद दातार समताभाव को धारण करूँ।।5।।
निर्वाण पावैं सुर–असुर–नरराज के वैभव सहित।
यदि ज्ञान–दर्शनपूर्वक चारित्र सम्यक् प्राप्त हो।।6।।
चारित्र ही बस धर्म है वह धर्म समताभाव है।
दृगमोह–क्षोभविहीन निज परिणाम समताभाव है।।7।।
जिसकाल में जो दरव जिस परिणाम से हो परिणमित।
हो उसीमय वह धर्मपरिणत आतमा ही धर्म है।।8।।

आत्मा की उपासना कैसे होती है ?

पूज्यपाद आचार्य देवनन्दिस्वामी के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 22 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है –

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः ।
आत्मानमात्मवान्ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम् ।।22।।

मन की एकाग्रता द्वारा इन्द्रियों के समूह को वश करके अपने में अर्थात् आत्मा में स्थित आत्मा को आत्मा के द्वारा ही ध्याना चाहिये। यही आत्मा की उपासना है।

(गतांक से आगे)

यह तो भाई ! तुम्हारे स्वदेश में ले जानेवाली बात है। तुम्हारा स्वदेशस्वभाव है, वहाँ तुम्हारा ज्ञान है और भान भी वहाँ ही है। अनुभवप्रकाश में आता है **अपने परमेश्वर को तू दूर न देख, तू स्वयं को प्रभुपने स्थापित कर !** तेरा परमेश्वर तेरे पास ही है। विकल्प या व्यवहार में तेरा प्रभु नहीं है, तेरी सामर्थ्य तेरे पास ही है; उसके लिए तू स्वयं को प्रभुपने स्थापित कर ! अपनी प्रभुता का स्वीकार कर ! जब इस प्रभुता की प्रतीति का अंतर से जोर आयेगा, तभी स्वसंवेदन प्रगट होगा।

तत्त्वानुशासन के 162 वें श्लोक में लिखा है कि **स्व–पर प्रतिभास स्वरूप तुम्हारा स्वभाव है,** स्व और पर को जानने का आत्मा का स्वभाव है। यह जीव स्वयं को अचिंत्य स्वभाववाला तो मानता नहीं है और मैं रोगी, मैं रागी–द्वेषी, मैं काला, मैं रूपवान, मैं पैसेवाला – ऐसा मानता है; किन्तु इसतरह परपदार्थ में और विभाव में स्वयं की अस्ति मानना तो आत्मा को कलंकित करना है।

प्रश्न : प्रभु ! यह तो बहुत कठिन बात है?

उत्तर : अरे ! यह कठिन बात नहीं। सर्वप्रथम स्वयं की अस्ति स्वीकार करना यह प्रारंभिक बात है।आत्मा की सत्ता कितनी और उसकी प्राप्ति कैसे हो ? यह प्रारंभिक बात है। व्यवहार, निमित्त और संयोगो की लोगों को ऐसी आदत पड़ गई हैं की उन्हें यह

बात कठिन लगती है। परन्तु देहदेवल में विराजमान देव की अस्ति तो पहले स्वीकार करनेयोग्य है। जो समवशरण में विराजे हैं, वे भगवान तुम्हारे नहीं। पहले सत्य का अंतर में स्वीकार करो। जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा ही विश्वास में लेना आत्मख्याति है। विश्वास लेकर अंतर में जाओ, वस्तुपने के विश्वास बगैर अंतर में नहीं जा सकते।

अतीन्द्रिय आनन्द से निर्मित आत्मपर्वत में जाने का रास्ता एक ही है। स्वयं स्वयं के महिमावंत स्वभाव का विश्वास लाकर स्वसंवेदन प्रगट करना, यही एक मार्ग है। राग, विकल्प आदि तो मेरे स्वरूप में नहीं; परन्तु अपूर्णता या अल्पज्ञता भी मेरे स्वरूप में नहीं है। अपूर्ण पर्याय बराबर मेरा स्वरूप नहीं है। भगवान कहते है कि तू पूर्ण आत्मा को स्वीकार कर लेना। स्वयं को अधूरी पर्याय के बराबर मत मानना।

अनन्त ज्ञानियों ने जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा ही बतलाया है और भविष्य में भी वही कहेंगे। **एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ** यह तो कुदरती स्वभाव है, उसमें कौन फेरफार कर सकता है ? स्वत: सिद्ध अचिंत्य निज आत्म-स्वरूप स्वयं से ही स्वयं का ज्ञान करावे - ऐसा तत्त्व है। ऐसा पहले विश्वास करना पड़ेगा।

आत्मा स्वयं को जाने और पर को भी जाने - ऐसा आत्मा का स्वत: स्वभाव है। उसे जानने में किसी भी अन्य साधनों की जरूरत नहीं। आत्मा आत्मा को आत्मा से आत्मा में जान लेता है, उसमें उसको किसी की जरूरत नहीं। परन्तु जानने में निमित्त है - ऐसा कहनेवाला स्वयं को पागल ठहराता है; परन्तु वास्तविकरूप से स्वभाव के साधन के लिए अन्य किसी भी निमित्त की आवश्यकता नहीं है।

अनादि से वस्तु का जैसा स्वरूप है, वैसा ही भगवान ने बताया है, कोई नया नहीं बनाया है। आत्मा से आत्मा को ध्यानेवाले ज्ञानी को शुभभाव भी आता है; परन्तु उसकी उसे कीमत नहीं। अज्ञानी को शुभभाव की महिमा आती है। ज्ञानी उसको स्वभाव का साधन नहीं मानता, इसकारण ज्ञानी को शुभभाव की महिमा नहीं आती।

स्वभाव को साधने के लिए कभी स्व का साधन और कभी पर का साधन माननेवाले को यह एक स्वभाव का साधन एकान्त लगता है; परन्तु यह एकान्त नहीं, सम्यक् एकान्त है। जहाँ ज्ञान है, वहाँ ही उसका ज्ञान होता है, उसमें पर के निमित्त के साधन की कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि निमित्त में ज्ञान नहीं, ज्ञान तो आत्मा में है।

परमार्थ से प्रत्येक पदार्थ स्वयं के स्वरूप से रहता है; इसलिए आत्मा के प्रत्येक भावों का आधार आत्मा ही है। स्वभाव का आधार स्वभाव हैं; इसलिए स्वभाव की

प्राप्ति भी स्वभाव से ही है। व्यवहार रागादि आत्मा का आधार नहीं; इसलिए उससे (रागादि से) आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए मोक्षार्थी को उचित है कि वह पाँच इन्द्रियों को संयमित करके आत्मा से आत्मा को ध्यावे।

श्री पूज्यपाद स्वामी द्वारा रचित यह इष्टोपदेश ग्रन्थ है, उसमें 21 वीं गाथा द्वारा यह बात बतायी कि आत्मा का हित कैसे होता है? यहाँ 22 वीं गाथा चल रही है।

21 वीं गाथा में कहा था कि आत्मा एक समय में लोकालोक को जाननेवाला, शरीरप्रमाण, नित्य अनंत सुखस्वरूप वस्तु है। ऐसे आत्मा को अन्तर स्वसंवेदन प्रमाण से जान सकते हैं अर्थात् स्वयं ही स्वयं को स्वयं से जान सकेह्न ऐसा स्व-संवेदनगम्य आत्मा का स्वरूप है।

यहाँ शिष्य प्रश्न करता हैं कि इस आत्मा की उपासना, सेवा एवं उसमें एकाग्रता किसप्रकार करें?

सार में सार यह बात है कि भगवान की सेवा तो शुभभाव है, आत्मा की सेवा करना वह धर्म है।

तब शिष्य प्रश्न करता है कि आत्मा कि उपासना किसप्रकार करें? हम अपना हित किसप्रकार करें?

देखो ! शिष्य भी कैसा प्रश्न पूछता है ! ऐसा नहीं पूछा कि मैंने मंदिर बनवाये, शुभभाव किये तो हमें धर्म हुआ होगा न !

उसको मुनिराज उत्तर देते हैं कि यह तो त्रिकोलीनाथ द्वारा कहा गया इष्ट उपदेश है। आत्मा का अनादि सनातन सत्स्वरूप स्व-पर को जानने का है। स्वयं को स्वयं से जानने का है, जड़पदार्थ और उसकी क्रिया को जानने का है और शुभाशुभभावों को भी जानने का है। आत्मा का जानने का स्वत: स्वभाव होने से जानने की क्रिया में उसको अन्य द्रव्यों की सहायता की जरूरत नहीं पड़ती तथा स्वयं के स्वभाव में एकाग्र होने में भी उसको अन्य कारकों की (साधनों की) जरूरत नहीं पड़ती।

इन्द्रिय विषयों और शुभाशुभ विकल्पों को छोड़कर स्वयं के स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता आत्मा स्वयं ही करता है। स्वयं के स्वभाव की साधना करने के लिए आत्मा को अन्य कारकों की जरूरत नहीं।

इस उपदेश का नाम ही इष्ट उपदेश है। यह उपदेश आत्मा का हित करानेवाला है। जड़ की क्रिया से या शुभभाव से हित होता है ह्न ऐसा उपदेश इष्ट उपदेश नहीं। **(क्रमश:)**

मार्ग का फल तो निर्वाण है

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की **दूसरी गाथा** पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

मग्गो मग्गफलं ति य दुविहं जिण सासणे समक्खादं।
मग्गो मोक्ख उवायो तस्स फलं होइ णिव्वाणं ।।

मार्ग और मार्गफल ऐसे दो प्रकार का कथन जिनशासन में किया गया है। मार्ग मोक्ष-उपाय है और उसका फल निर्वाण है।

(गतांक से आगे .....)

निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप शुद्ध रत्नत्रयात्मक मार्ग परम निरपेक्ष होने से मोक्ष का उपाय है और उस शुद्ध रत्नत्रय का फल स्वात्मोपलब्धि अर्थात् निज शुद्धात्मा की प्राप्ति है।

निज परमात्मतत्त्व की श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है। दूसरे परमात्मा की श्रद्धा वह व्यवहार श्रद्धा है, राग है। अपने परमात्मतत्त्व की सम्यक्श्रद्धा निरपेक्ष है और वही सम्यग्दर्शन है। परमोत्कृष्ट ज्ञायकस्वभाव परमानन्द की मूर्ति ऐसे अपने आत्मा की श्रद्धा वह सम्यग्दर्शन है। देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा वह व्यवहार है। यहाँ परमार्थ कथन में तो व्यवहार की बात गौण है।

निज परमात्मा का ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और शास्त्र का ज्ञान व्यवहार ज्ञान है। चैतन्य स्वभाव के सन्मुख होकर निज परमात्मतत्त्व का जो ज्ञान हुआ वही सम्यग्ज्ञान है। शब्द में कहीं ज्ञान नहीं; और शब्द की ओर का ज्ञान भी व्यवहार में जाता है। निज परमात्मतत्त्व में ही ज्ञान की पूर्ण शक्ति भरी है और उसी के आश्रय से ज्ञान प्रकट होता है। वह ज्ञान निमित्त में से, राग में से या पर्याय में से नहीं आता; किन्तु निज परमात्मतत्त्व में से ही वह प्रकट होता है। ऐसा ज्ञान ही मोक्षमार्ग है।

ध्रुव परमात्मतत्त्व कभी सावरण नहीं है, वह तो सदा प्रकट ही है; उसके सन्मुख होने पर पर्याय में सम्यग्ज्ञान प्रकट होता है। किसी जड़ वस्तु ने ज्ञान को रोका नहीं है। कोई प्रश्न करे कि आठ वर्ष की आयु होने से प्रथम केवलज्ञान क्यों नहीं होता ? क्या कोई आवरण रोकता है ? तो कहते हैं कि नहीं। कोई किसी को रोकता नहीं, किन्तु उस आत्मा की ज्ञान की पर्याय में ही वैसी योग्यता है। अन्तर में ज्ञान की एकाग्रता के अभाव के कारण ही ज्ञान का विकास रुका है, किसी आवरण के कारण नहीं। ध्रुवस्वभाव त्रिकाल है, जितना उसका आलम्बन लेता है, उतना ही ज्ञान का विकास होता है। ऐसे ध्रुवतत्त्व के अवलम्बन से जो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रकट हुआ वही मोक्षमार्ग है, वही नियमसार है।

अन्तर में मोक्षमार्ग की रीति जाने बिना बाह्य में भटकने से कहीं कार्य सिद्धि नहीं होती। मोक्षमार्ग अपने परमात्मतत्त्व के आश्रय है। परमात्मतत्त्व किसको कहें ? दूसरे परमात्मा हुए उनकी तो बात ही नहीं; क्योंकि उनके लक्ष से तो राग होता है और अपनी शुद्ध पर्याय प्रकट हुई वह भी परमात्मतत्त्व नहीं है; किन्तु जो त्रिकाली स्वभाव है, वही परमात्मतत्त्व है और उसी का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।

निज परमात्मतत्त्व का अनुष्ठान सम्यक्चारित्र है। बाह्य में व्रतादि का अनुष्ठान तो शुभराग है, वह वास्तविक चारित्र नहीं है; किन्तु पुण्य-पाप के भाव से रहित निज परमात्मतत्त्व में एकाग्रतारूप दशा ही सच्चा अनुष्ठान है, वही सम्यक्चारित्र है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों में ही निजपरमात्मतत्त्व का ही अवलम्बन है, बाह्य में किसी पर का अवलम्बन नहीं है। निज परमात्मतत्त्व के अतिरिक्त किसी भी पर का अवलम्बन, शुद्ध रत्नत्रय में नहीं है। इसीलिये वह रत्नत्रय परम निरपेक्ष है और उसी को गणधरों ने मोक्षमार्ग कहा है।

यह मोक्षमार्ग परम निरपेक्ष है। ध्रुव परमात्मतत्त्व की अपेक्षा के अतिरिक्त अन्य किसी निमित्त, विकल्प या व्यवहार की अपेक्षा शुद्ध रत्नत्रय को नहीं है। अहो ! रत्नत्रय तो परम निरपेक्ष है। ऐसा निरपेक्ष रत्नत्रय ही मोक्ष का मार्ग है। निमित्त से हो या राग से हो, ऐसी अपेक्षा मोक्षमार्ग को नहीं है। मोक्षमार्ग में पर की अपेक्षा माने तो उसे अन्तरतत्त्व में झुकाव नहीं हो सकता। अन्तरस्वभाव का आश्रय लिया उसमें किसी पर की, राग की या भेद की अपेक्षा नहीं – ऐसा निरपेक्ष मोक्षमार्ग है। निमित्त और राग तो ज्ञान करने के लिये हैं; किन्तु उनकी अपेक्षा से दर्शन-ज्ञान-चारित्र विकसित होगा अथवा प्रकट होगा – ऐसी अपेक्षा मोक्षमार्ग को नहीं है।

शुद्ध रत्नत्रय अर्थात् निजपरमात्मतत्त्व की सम्यक्श्रद्धा, उसका सम्यक्ज्ञान और

सम्यक् आचरण। पर की तथा भेदों की लेशमात्र अपेक्षा रहित होने से वह शुद्ध रत्नत्रय मोक्ष का उपाय है और उसका फल मोक्ष है।

जिसको स्व की अपेक्षा है और पर की अपेक्षा नहीं है – ऐसा मोक्षमार्ग है। राग की अपेक्षा से मोक्षमार्ग का प्रवर्तन नहीं है। वह तो राग के अभाव से और ध्रुव चैतन्य परमात्मतत्त्व के आश्रय से ही प्रवर्तता है।

शुद्धरत्नत्रय को अशुद्धता की अपेक्षा नहीं। व्यवहाररत्नत्रय है, इसलिये निश्चय-रत्नत्रय है ह्न ऐसी व्यवहार की अपेक्षा भी मोक्षमार्ग को नहीं। निरपेक्ष मोक्षमार्ग में पर की या भेद की अपेक्षा है ही नहीं। प्रथम भेद या राग आता है, किन्तु वह मोक्षमार्ग का कारण नहीं; मोक्षमार्ग तो उनसे निरपेक्ष है।

निरावलम्बी मोक्षमार्ग है, अकेले स्वभाव के ही अवलम्बन से मोक्षमार्ग है, पर निरपेक्ष मोक्षमार्ग है। कोई कहे कि क्या मोक्षमार्ग में व्यवहार नहीं है ? तो कहते हैं कि व्यवहार में व्यवहार है; किन्तु निरपेक्ष मोक्षमार्ग में वह व्यवहार नहीं है। परमात्मतत्त्व के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रकट हुआ, उसमें व्यवहार की अपेक्षा नहीं है। शुभराग हो भले ही, किन्तु मोक्षमार्ग उसके आश्रय से नहीं है। ज्ञानी गुरु निमित्त होता है, किन्तु उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान नहीं होता, वह तो निज परमात्मतत्त्व के ही आश्रय से होता है।

ज्ञानी गुरु भी ऐसा ही बताते हैं कि तू अपने स्वभाव के सन्मुख हो तो तुझे रत्नत्रय प्रकट होगा, कहीं निमित्त के सन्मुख होने से वह प्रकट नहीं होगा। इसप्रकार निरपेक्ष समझकर निजपरमात्मतत्त्व के आश्रय से रत्नत्रय प्रकट करे तब गुरु के निमित्त की अपेक्षा से व्यवहार लागू पड़ता है, फिर भी मोक्षमार्ग तो निरपेक्ष वीतरागी ही है।

अन्तर में अभेदता हो वही मोक्षमार्ग है, भेद करके विकल्प हो वह मोक्षमार्ग नहीं है। शुद्धरत्नत्रयात्मक मार्ग परमनिरपेक्ष है, ऐसा सन्तों का उपदेश है और यही मोक्षमार्ग है।

मेरे आत्मा के लिये सभी परद्रव्य अभावस्वरूप हैं, उनका अवलम्बन मुझे नहीं है; मेरा ध्रुवपरमात्मस्वभाव ही मेरे रत्नत्रय का आश्रय है। पर के आश्रय से लाभ की जिसकी मान्यता है, उसने मोक्षमार्ग को निरपेक्ष माना ही नहीं। पंच महाव्रतादि की वृत्ति उठी, उसके अवलम्बन से मेरा चारित्र विकसित होगा – ऐसी जिसकी मान्यता है;

उसको ध्रुव परमात्मतत्त्व के अवलम्बन से मेरा मोक्षमार्ग है – ऐसी श्रद्धा-प्रतीति नहीं है।

सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान में पर की या विकल्प की अपेक्षा नहीं है और सम्यग्चारित्र में भी पर की या पंचमहाव्रत के विकल्प की अपेक्षा नहीं है। भव्य-समूह ऐसे मोक्षमार्ग को जानकर मोक्ष प्राप्त करे, इसीलिये इस शास्त्र की रचना हुई है। निजात्मा परिपूर्ण अनन्तशक्ति का पिण्ड है। उसमें अन्य किसी की अपेक्षा नहीं है। अभेद चैतन्य की अपेक्षा है, किन्तु भेद की अपेक्षा नहीं है। स्व की अपेक्षा है, किन्तु पर की अपेक्षा नहीं है – ऐसा परम निरपेक्ष मोक्षमार्ग है, वही वीतरागी सन्तों ने कहा है।

और उस शुद्ध रत्नत्रय का फल स्वात्मोपलब्धि (निज शुद्धात्मा की प्राप्ति) है। अपने आत्मा की पूर्ण शुद्ध मुक्तदशा प्रकट होना ही शुद्धात्मा की प्राप्ति है। बीच में देवपद मिले वह राग का फल है, वह कहीं मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग तो निरपेक्ष अपने में है और उसका फल भी अपने में है। अपना आत्मा ही भगवान बन जाये वही मोक्षमार्ग का फल है।

देखो ! वीतरागी सन्तों ने कैसा निरपेक्ष मोक्षमार्ग बताया है। वे सन्त ऐसे निरपेक्ष मोक्षमार्ग की साधना स्वयं कर रहे हैं और उस साधना के करते-करते यह रचना हो गई है। सन्तों को तो मुक्तिदशा ही सर्वप्रिय है, इसीलिये उसे स्त्री की उपमा दी है। जगत को स्त्री प्रिय है, तो सन्तों को मोक्षरूपी स्त्री प्रिय है। ऐसे महामुनियों को जो जीव आरोप लगाते हैं, वे तो स्वच्छन्दी हैं।

कोई कहे कि मुनि होकर भी मोक्ष को स्त्री की उपमा क्यों दी ? क्या किसी सुन्दर और स्वस्थ उपमा का उनके पास अभाव था ? तो कहते हैं कि संसारी जीवों को स्त्री की प्रीति है, उसको छुड़ाकर मोक्ष की प्रीति कराने के लिये ही स्त्री की उपमा दी है। संसार की प्रीति की दिशा को बदल कर मोक्ष की प्रीति की ओर उन्मुख किया है। सन्त तो स्वयं निरपेक्ष और वीतरागी ही हैं। **(क्रमशः)**

परीक्षा तिथि निश्चित

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015 (राजस्थान) की शीतकालीन परीक्षाएँ दिनांक 27, 28 एवं 30 जनवरी, 2004 को सम्पन्न होने जा रही हैं। सम्बन्धित परीक्षा केन्दों को दो माह पूर्व छात्रों के प्रवेश-फार्म डाक से भेजे जा चुके हैं। जिन केन्द्रों को अभी तक प्रवेश-फार्म प्राप्त नहीं हुए हैं, वे तत्काल पत्र लिखकर मँगा लेवें तथा उन्हें भरकर परीक्षा बोर्ड कार्यालय को शीघ्र भिजवा देवें। ह्न **ओमप्रकाश आचार्य, प्रबंधक : परीक्षा विभाग**

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है, उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है, साथ ही अनेक कलश भी लिखे हैं। उन पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमश: प्रस्तुत हैं।

आत्मवस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप है, सत्पुरुष उसे यथार्थ जानते हैं तथा भगवान जिनेन्द्रदेव के मार्ग का उल्लंघन न करते हुए ज्ञानस्वरूप की साधना द्वारा पर्याय में भी पूर्णता को प्राप्त होते हैं अर्थात् केवलज्ञानी हो जाते हैं।

देखो, यह है जैननीति ! जैसा वस्तुस्वरूप है, वैसा ही जानना, वैसा ही श्रद्धान करना तथा स्व-सन्मुख होकर उस आत्मद्रव्य में ही रमणता करना। बस ! यही है जिननीति और यही है जैनधर्म का मुक्तिमार्ग। सन्तजन इस मार्ग का उल्लंघन नहीं करते हुए केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं।

प्रश्न - फिर सिद्ध भगवान मुक्ति में बैठे-बैठे क्या करते हैं ? क्या वे वहाँ सचमुच कुछ नहीं करते ?

उत्तर - स्वयं ज्ञानस्वरूप होने से उन्हें जो अनन्तसुख प्रगट हुआ है, सिद्ध भगवान तो अकेले उस आनन्द को ही भोगते हैं, उस आनन्द का ही अनुभव करते हैं, पर का कुछ नहीं करते।

प्रश्न - तीनलोक के नाथ, अनन्तज्ञान एवं अनन्त शक्ति के धनी होकर भी दूसरों का कुछ भी भला नहीं करते ?

उत्तर - हाँ, कुछ भी नहीं करते। वे किसी का कुछ करें - ऐसा उनका स्वभाव ही नहीं है। जिनमार्ग के अनुसार परमाणु-परमाणु का परिणमन पूर्ण स्वतंत्रा और स्वावलम्बी है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता नहीं है, सिद्ध भगवान भी तो एक आत्मद्रव्य

हैं, भला फिर वे अन्य का क्या कर सकते हैं। इससे विपरीत मानना मिथ्यात्व है, यह जिननीति नहीं है, बल्कि अनीति है। जो जिननीति का उल्लंघन करता है, वह मिथ्यादृष्टि होकर अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है।

वस्तुस्वरूप अनेकान्तमय है और स्याद्वाद उसका द्योतक है। यहाँ कहते हैं कि जो सत्पुरुष अनेकान्त के साथ सुसंगति बैठाकर आत्मा को देखते हैं, वे स्याद्वाद द्वारा वस्तु को यथार्थतया प्रकाशित करते हैं।

भगवान जिनेन्द्रदेव का शुद्धरत्नत्रायरूप मार्ग स्याद्वाद न्याय से सिद्ध है - ऐसे रत्नत्रायरूप मोक्षमार्ग का उल्लंघन न करते हुए सत्पुरुष ज्ञानस्वरूप होते हैं अर्थात् परम अमृतमय मोक्षपद को प्राप्त करते हैं। यह है अनेकान्तदृष्टि का फल।

बंध अधिकार में आता है कि ज्ञानस्वरूपी आत्मा जो रागभाव व बंधभाव को प्राप्त होता है, वह उसका स्वरूप नहीं है। स्व-स्वभावरूप परिणमना और व्यवहार या राग में न रमना ही भगवान आत्मा का स्वभाव है तथा वह स्याद्वाद न्याय से सिद्ध है। आचार्यदेव ने परिशिष्ट के प्रारंभ में दो बातों को कहने का संकल्प किया था -

(1) स्याद्वाद अर्थात् वस्तु का अनेकान्तस्वरूप कहूँगा।

(2) उपाय-उपेय कहूँगा।

स्याद्वाद के कथन में शक्तियों का वर्णन करने के उपरान्त आचार्यदेव उपाय-उपेय भाव के सम्बन्ध में कहते हैं।

यह आत्मवस्तु ज्ञानमात्रा है फिर भी इसमें उपायत्व और उपेयत्व दोनों भाव कैसे घटित होते हैं, अब इसका विचार करते हैं -

देखो, यद्यपि भगवान आत्मा त्रिकाल एक ज्ञायक-स्वरूप, ज्ञान का पिण्ड प्रज्ञा-ब्रह्मस्वरूप प्रभु है; तथापि उसकी पर्याय में उपाय-उपेय भाव तो है ही। वस्तुस्वरूप से आत्मा नित्य ज्ञानमात्रा होते हुए भी इसकी पर्याय में मोक्षमार्ग एवं सिद्धपना - ऐसे दो भाव हैं; क्योंकि द्रव्यरूप से एक होते हुए भी पर्यायरूप में स्वयं साधकरूप और सिद्धरूप - इसतरह क्रम से परिणमता है। इसमें साधकरूप परिणमन उपाय है और सिद्धरूप परिणमन उपेय है। प्राप्तव्य मोक्ष उपेय है और जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त किया जाये, वह मोक्षमार्ग उपाय है।

देखो ! साधकपना व सिद्धपना - ये दोनों ही आत्मा के परिणाम हैं। ज्ञान स्वभाव की दृष्टि और रमणता होने पर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रारूप शुद्ध

रत्नत्राय की वीतरागीदशा प्रगट होती है, वह साधकदशा है। उस साधकदशारूप आत्मा स्वयं ही परिणमता है। तथा केवलज्ञान होकर जो सिद्धरूप दशा होती है, उसरूप भी आत्मा स्वयं ही परिणमता है। इन दोनों दशाओं में बाहर के साधनों की अपेक्षा नहीं होती। यद्यपि मोक्षमार्गी का बाह्य व्यवहार सही (यथार्थ) ही होता है; परन्तु बाह्य व्यवहार के कारण अन्तर की दशा पर कोई अच्छा या बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, अन्तर की निर्मलता बाहर के व्यवहार की मुँहताज नहीं है। फिर दया, दान, व्रत, भक्ति, आदि सब तो राग की वृत्ति का उत्थान है - इन राग की शुभ वृत्तियों से अन्दर आत्मा की निर्मल वीतरागदशा का होना कैसे संभव है ? यह बात तीनकाल में कभी संभव नहीं हो सकती।

भाई ! जिन जीवों को अनादिकाल से अपने चैतन्य आत्मा की महिमा ध्यान में नहीं आई है तथा जिन्होंने अपने चैतन्यस्वभाव की सामर्थ्य का ज्ञान नहीं किया है, उन्होंने बाह्य क्रिया - दान, व्रत, तप, भक्ति आदि को ही मोक्षमार्ग का साधन मान लिया है। ऐसे जीव मिथ्यामान्यता में ही अटके होने के कारण यथार्थ मोक्षमार्ग से भटक रहे हैं।

अन्दर में आप स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप त्रिकाल विद्यमान है, उसे भूलकर 'मैं मनुष्य हूँ' - ऐसी पर्यायबुद्धिरूप स्वयं को मान लिया है। शुभराग को ही मोक्षमार्ग मान लिया है, जो कि सर्वथा अज्ञान है। (क्रमशः)

(पृष्ठ 16 का शेष ...)

आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है - ऐसा सर्वथा एकान्त नहीं है। जैसे, आत्मा द्रव्य से नित्य ही है, यह बात सही है - सम्यक् एकान्त है, किन्तु आत्मा नित्य ही है और किसी भी प्रकार से अनित्य नहीं है - ऐसा समझे तो एकान्त हो जाता है; वैसे ही ज्ञान, ज्ञान ही है - यह सही है; किन्तु आत्मा ज्ञान ही है - ऐसा सर्वथा एकान्त नहीं। ज्ञान लक्षण द्रव्य के साथ तादात्म्यपने है; किन्तु एक ज्ञान जितना ही आत्मा है - ऐसा नहीं है। ज्ञान द्वारा आत्मा, ज्ञान है; किन्तु ज्ञान के साथ अनन्तगुण भी हैं।[1]

उक्त सम्पूर्ण विश्लेषण का सार यही है कि आत्मा ज्ञानादि अनंतगुणों का अखण्डपिण्ड है, अनंतगुणमय अभेद वस्तु है। आत्मा के अनन्तगुणों में ज्ञान भी एक गुण है; इसकारण यह कहा जाता है कि ज्ञान आत्मा है। इसी आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि सुख आत्मा है, श्रद्धा आत्मा है, चारित्र आत्मा है; किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि आत्मा ज्ञान है, क्योंकि आत्मा अकेला ज्ञान ही नहीं है, सुखादिरूप भी है।

1. दिव्यध्वनिसार भाग-1, पृष्ठ - 211

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : द्रव्य और गुण में तथा एक गुण का दूसरे गुण में भी क्या कोई अभाव है? यदि है तो कौन-सा और उसके समझने से क्या लाभ है?

उत्तर : द्रव्य है, वह गुण नहीं और गुण है, वह द्रव्य नहीं। गुण और द्रव्य के बीच में तथा एक गुण और दूसरे गुण के बीच में अतद्भाव है। अपने द्रव्य में भी गुण और द्रव्य में अतद्भाव है। आ हा हा ! यहाँ तक गंभीरता को स्पर्श किया है तो फिर दूसरे बाहर के पदार्थ कि जिनके प्रदेश भी पृथक ही हैं, वे तो सर्वथा भिन्न हैं ही ह्न ऐसी दशा में एक पदार्थ दूसरे पदार्थ का क्या कर सकता है? प्रभु ! तू तो अकेला ही है। अकेले में भी सत्ता को और द्रव्य को तद् अभाव है। ज्ञान है वह आत्मा नहीं, आनन्द है वह आत्मा नहीं और आत्मा है वह आनन्द नहीं, ज्ञान नहीं; इसप्रकार दो के बीच तद् अभाव है। प्रवचनसार ग्रन्थ में द्रव्य की स्वतन्त्रता के अनेक बोल आये हैं। जिसप्रकार सत्य है; उसीप्रकार ज्ञान में आवे तभी पर्याय अन्दर झुक सकती है, अन्यथा पर्याय अन्दर में नहीं झुक सकती और अन्दर त्रिकालीस्वभाव पर लक्ष गए बिना आनन्दानुभूति नहीं हो सकती।

प्रश्न : द्रव्य को गुण स्पर्श नहीं करता और गुण को द्रव्य स्पर्श नहीं करता ह्न ऐसा कहने का प्रयोजन क्या है?

उत्तर : गुणभेद की दृष्टि छुड़ाकर अभेद वस्तु की दृष्टि कराना ही इस कथन का प्रयोजन है।

प्रश्न : द्रव्य और गुणों में कथंचित् भेद और कथंचित् अभेद किस प्रकार से है?

उत्तर : निश्चयस्वरूप के ज्ञाता जैनाचार्य, जिसप्रकार हिमालय और विन्ध्याचल में भिन्नपणा है अथवा एक ही क्षेत्र में स्थित जल और दूध में भिन्न प्रदेशपना है, वैसा भिन्नपना द्रव्य और गुणों में नहीं मानते, साथ ही साथ एकान्त से द्रव्य और गुणों का एकपना भी नहीं मानते। अभिप्राय यह हुआ कि जिसप्रकार द्रव्य और गुणों में प्रदेशों

की अपेक्षा से अभिन्नत्व है, उसीप्रकार संज्ञा, संख्या, लक्षणादि की अपेक्षा से भी अभिन्नत्व है, एकत्व है ह्न ऐसा नहीं मानते; अर्थात एकान्त से द्रव्य और गुणों का न तो सर्वथा एकत्व मानते है और न सर्वथा भिन्नत्व ही। अपेक्षा के बिना एकत्व और अन्यत्व में से एक भी नहीं मानते; हाँ; भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से दोनों स्वभावों को मानते हैं। प्रदेशों की एकता से एकत्व है और संज्ञा, संख्यादि की अपेक्षा से द्रव्य और गुणों में अन्यत्व है ह्न ऐसा आचार्य मानते हैं। यही श्री जयसेनाचार्य ने पंचास्तिकाय ग्रन्थ की गाथा 45 की टीका में भी कहा हैं।

प्रश्न : कोई द्रव्य अपना स्वभाव नहीं छोड़ता है तो जीव संसारी कैसे?

उत्तर : कोई द्रव्य अपना स्वभाव नहीं छोड़ता ह्न इसका अर्थ यह है कि कोई भी द्रव्य अपने त्रिकाली स्वभाव को नहीं छोड़ता। वर्तमान दशा की विकारी दशा होती है, बन्ध अवस्था होती है, तो भी द्रव्य अपने त्रिकाली स्वभाव को छोड़ता नहीं है। बन्ध की अवस्था हो, मोक्षमार्ग की अवस्था हो अथवा मोक्ष हो; परन्तु वस्तु तो जैसी की तैसी पर्याय के पीछे तीनों काल मौजूद पड़ी है।

प्रश्न : द्रव्य में से पर्याय उत्पन्न होती है, पर्याय व्यय होकर द्रव्य में मिलती है; तब द्रव्य ध्रुव टंकोत्कीर्ण तो नहीं रहा?

उत्तर : पर्याय द्रव्य में से उत्पन्न होती है और पर्याय व्यय होकर द्रव्य में मिलती है, यह पर्यायार्थिक नय से कहा है। द्रव्यार्थिक नय से द्रव्य तो ध्रुव टंकोत्कीर्ण कूटस्थ है।

प्रश्न : द्रव्य से पर्याय भिन्न है तो पर्याय कहाँ से आती है ?

उत्तर : पर्याय आती तो द्रव्य में से ही है, कहीं बाहर से नहीं आती; लेकिन जब पर्याय को सत् रूप से स्वतंत्र सिद्ध करना हो तब पर्याय, पर्याय से ही है। द्रव्य से पर्याय हो तो द्रव्य एकरूप रहता है और पर्याय अनेकरूप होती है। उसे द्रव्य जैसी एकरूप ही होना चाहिए, लेकिन वैसी होती नहीं। द्रव्य सत् है; वैसे पर्याय भी सत् है, स्वतंत्र है ह्न इस अपेक्षा से द्रव्य से पर्याय को भिन्न कहा जाता है।

प्रश्न : द्रव्य और पर्याय दो धर्मों को पृथक् बताने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर : दो धर्म भिन्न हैं; उनकी प्रसिद्धि करने का प्रयोजन है। पर्याय एक समय की है और उसके पीछे ध्रुव द्रव्यत्व त्रिकाल ज्यों का त्यों रहता है, इसका ज्ञेय बनाना चाहिए। ●

समाचार दर्शन –

सिद्धचक्र महामण्डल विधान सानन्द सम्पन्न

कोलकाता : यहाँ श्री दिग. जैन मन्दिर पद्मोपुकुर में दिनांक 15 से 22 अक्टूबर, 2003 तक श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान तथा भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में दिनांक 23 से 25 अक्टूबर, 2003 तक श्री महावीर पंचकल्याणक विधान का भी आयोजन किया गया।

इस अवसर पर प्रतिदिन प्रात: एवं रात्रि में अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर के प्रवचनसार ग्रन्थ के ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार पर मार्मिक व्याख्यान हुये। जनता की विशेष मांग पर आपका एक व्याख्यान **दीपावली** के सन्दर्भ में तथा एक व्याख्यान **अहिंसा महावीर की दृष्टि में** विषय पर एशियाटिक सोसायटी में भी हुआ।

प्रात:कालीन प्रवचन के पूर्व शांति जाप, जिनेन्द्र अभिषेक एवं पूजन-विधान तथा सायंकाल पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन चलते थे। प्रतिदिन जिनेन्द्र भक्ति का आयोजन भी किया गया।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य बाल ब्र. पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री, सनावद के निर्देशन में पण्डित मनीषजी शास्त्री और अभिनयजी शास्त्री, जबलपुर ने सम्पन्न कराये। **– हर्षद शाह**

कर्नाटक में पंचदिवसीय शिविरों का आयोजन

श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के स्नातक पण्डित राजेन्द्रकुमारजी पाटील शास्त्री, एलिमुन्नोली द्वारा कर्नाटक प्रान्त के विभिन्न स्थानों पर पंचदिवसीय शिविरों का आयोजन कर समाज को जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों से परिचित कराया गया।

आपने दिनांक 1 से 5 अक्टूबर तक हासन, 6 से 10 अक्टूबर तक मायसन्द्र , 11 से 15 अक्टूबर तक बेलूर, 16 से 20 अक्टूबर तक दडगा, 21 से 25 अक्टूबर तक चन्नरायपट्टन, 26 से 28 अक्टूबर तक बैंगलोर, तथा 29 अक्टूबर से 1 नवम्बर तक सालिग्राम आदि स्थानों पर इन शिविरों का सफलतापूर्वक आयोजन किया। इसके अतिरिक्त तडंगा में दिनांक 2 नवम्बर से 8 नवम्बर 2003 तक अष्टाह्निका पर्व के उपलक्ष्य में विशेष शिविर का आयोजन भी किया गया।

आपके द्वारा कर्नाटक प्रान्त में इसप्रकार के शिविरों का आयोजन विगत वर्ष से किया जा रहा हैं, जिसे स्थानीय समाज द्वारा सराहा जा रहा है। **ह्न श्रीमन्त एस. नेज**

श्री पंचमेरु-नन्दीश्वर मंडल विधान सम्पन्न

कारंजा (लाड) : यहाँ श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम गुरूकुल में पण्डित आलोककुमारजी शास्त्री एवं परिवार के द्वारा दिनांक 19 अक्टूबर 2003 को श्री पंचमेरु-नन्दीश्वर विधान का आयोजन किया गया।

विधी-विधान के संपूर्ण कार्य पण्डित आलोककुमारजी शास्त्री एवं पण्डित देवलालजी आंबेकर, चिखली के निर्देशन में पण्डित महावीरजी मांगुलकर, पण्डित रवीन्द्रजी काले, श्री महावीरजी बेलोकर तथा श्री जवाहरलालजी बेलोकर के द्वारा सम्पन्न कराये गये।

इस अवसर पर पण्डित धन्यकुमारजी भोरे के मार्मिक व्याख्यान का लाभ भी स्थानिय श्रावक-श्राविकाओं को प्राप्त हुआ। **– रवीन्द्र काले**

वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिविर सानन्द सम्पन्न

कोल्हापुर (महा.) : यहाँ दिनांक 29 अक्टूबर से 4 नवम्बर, 2003 तक प्रथम बार ही सरोज स्मारक भवन एवं सर्वोदय स्वाध्याय समिति, कोल्हापुर द्वारा आयोजित वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर अनेक सफलताओं के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर प्रतिदिन ब्र. यशपालजी जैन द्वारा प्रात: जिनधर्म प्रवेशिका व रात्रि में प्रवचनसार ग्रंथ पर सारगर्भित प्रवचन हुए। पण्डित राकेशकुमारजी द्वारा प्रात:, दोपहर व रात्रि में समयसार, नाटक समयसार, प्रवचन रत्नाकर के आधार से निश्चय-व्यवहार स्तुति पर मार्मिक व्याख्यान हुए एवं पण्डित अमोलजी संघई द्वारा प्रात: व सायंकाल मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवे अधिकार एवं योगसार ग्रंथ पर सुश्राव्य प्रवचन हुए।

दोपहर की व्याख्यानमाला में पण्डित शांतिनाथजी वसगडे, पण्डित जिनचंदजी आलमान शास्त्री हेरले, पण्डित विक्रांतजी शहा शास्त्री सोलापुर, ब्र. जितेंद्रजी चंकेश्वरा अकलूज, पण्डित सुरेंद्रजी पाटील मलकापुर व पण्डित दिग्विजयजी आलमान शास्त्री हेरले आदि विद्वानों के विभिन्न विषयों पर व्याख्यान हुए। तथा पं. शीतलजी हेरवाडे शास्त्री कोल्हापुर, पं. भरतजी अलगौंडर शास्त्री, पं. शीतलजी आलमान शास्त्री व पं. अनिलजी आलमान शास्त्री द्वारा विभिन्न विषयों की बालकक्षाएँ ली गई। पं. अभिनन्दनजी पाटील, पं. अभिजीतजी पाटील, पं. रविन्द्र आलमान, पं. कीर्तिकुमार पाटील, पं. मिलिंद केटकाले, व पं. प्रसन्न शेटे आदि छात्र विद्वानों का भी कार्यक्रम संचालन में महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ।

इस मांगलिक अवसर पर संगीतमय **श्री पंचपरमेष्ठी मण्डल विधान** का आयोजन किया गया। विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य श्री टोडरमल दि. जैन सि. महाविद्यालय के छात्र विद्वानों द्वारा सम्पन्न कराए गए। प्रतिदिन रात्रि प्रवचन के पश्चात् शुद्धात्म मण्डल कोल्हापुर एवं अध्यात्म मण्डल हेरले द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए। लगभग 650 **आत्मार्थी बन्धुओं** ने शिबिर के माध्यम से धर्मलाभ लिया एवं लगभग 16 **हजार रुपयों का सत्साहित्य** घर-घर पहुँचा। जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान के अनेक सदस्य बने। **ह्न शांतिनाथ खोत**

प्रवचनसार अनुशीलन के सन्दर्भ में अभिमत

1. समयसार अनुशीलन की भांति प्रवचनसार की गाथाओं पर आपका **सारगर्भित अनुशीलन भी अद्वितीय** है।

बिना परिणामी के परिणाम नहीं और परिणाम बिना परिणामी नही ह्न यह हर द्रव्य की वस्तुगत व्यवस्था है। दृष्टि के विषयभूत आत्मा की उपरोक्त निजता सतत् ख्याल में रखना भव्यजीव के लिये अपरिहार्य है। प्रारंभिक गाथाओं के अनुशीलन से यह ध्वनित होता है कि हर पर्याय में ज्ञायक की ध्रुवता (स्वभावगत) वर्तमानवत् ही है। पर्याय उत्पाद-व्यय रूप है, तो त्रैकालिक स्वभाव की ध्रुवता भूत-भविष्य एवं वर्तमान में एक जैसी ही है और रहेगी। वर्तमान परिणति के नियमन के लिये त्रैकालिक कारण का भान कराने को प्रेरित करनेवाले ग्रन्थ नियमसार पर भी आपकी गरिमामय लेखनी चले ऐसी मंगलभावना है। **ह्न प्रो. कमलकुमार वैद्य, इन्दौर**

श्री टोडरमल महाविद्यालय के छात्र पीएच.डी. हुए

1. श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के स्नातक विद्वान डॉ. दीपक जैन, मुंबई ने राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा **पंचास्तिकाय संग्रह : एक अनुशीलन** विषय पर डॉ. शीतलचन्दजी जैन के निर्देशन में शोधकार्य पूर्ण कर पीएच.डी. (डॉक्टरेट) की उपाधि प्राप्त की। आपने जैनदर्शन से शास्त्री तथा आचार्य की परीक्षा भी उत्तीर्ण की है।

2. श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक विद्वान डॉ. भागचन्द जैन, बड़ागांव ने विभाग की सहाचार्या डॉ. बीना अग्रवाल के निर्देशन में **वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जैनदर्शन की प्रासंगिकता** विषय पर शोधकार्य पूर्ण कर राजस्थान विश्वविद्यालय से पीएच.डी. (डॉक्टरेट) की उपाधि प्राप्त की। वर्तमान में आप **ध्यान धारा** व **सम्यक्दर्शन** हिन्दी समाचार पत्र के सम्पादन के साथ महावीर पब्लिक स्कूल, जयपुर में अध्यापन कार्य कर रहे हैं।

3. श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक श्री सुमतकुमार जैन, बरां ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा आयोजित राष्ट्रीय स्तर की **कनिष्ठ शोध अध्येयावृत्ति एवं राष्ट्रीय व्याख्याता पात्रता परीक्षा नामक संयुक्त परीक्षा** में प्राकृत एवं जैनागम विभाग से नेट परीक्षा उत्तीर्ण की। वर्तमान में आप **अपभ्रंश कृति पण्डित तेजपाल विरचित वरांगचरिउ नामक पाण्डुलिपि का पाठ संपादन एवं अध्ययन** नामक शोध विषय में पीएच.डी.उपाधी हेतु जैन विश्वभारती संस्थान में अध्ययनरत हैं। इस वर्ष 2002-2003 का **आदर्श छात्र पुरस्कार** भी संस्थान द्वारा आपको प्रदत्त किया गया।

इस गौरवमयी उपलब्धि के लिये तीनों स्नातकों को श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय एवं वीतराग-विज्ञान परिवार की ओर से हार्दिक बधाई ! **ह्न प्रबन्ध सम्पादक**

वैराग्य समाचार

वयोवृद्ध श्री भगवानजी कचराभाई शाह, लन्दन का दिनांक 17 अक्टूबर, 2003 को देहावसान हो गया। आप पूज्य गुरुदेवश्री ने जो आध्यात्मिक क्रान्ति की है, उसके प्रबल पक्षधर थे। आपके निधन से मानो पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रसारित आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान की प्रभावना का स्तम्भ ढह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री के तत्त्वज्ञान को सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित करने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर अग्रगण्य है; इसीलिये आपको भी ट्रस्ट से विशेष प्रेम रहा है। यहाँ से संचालित प्रत्येक गतिविधि में आपका अमूल्य सहयोग रहा है। देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अनन्य भक्ति स्वरूप ही आपने श्री टोडरमल स्मारक भवन में स्थापित त्रिमूर्ति जिनालय में सिद्धक्षेत्र श्री पावापुरी का निर्माण करवाया।

आपने जिनवाणी एवं जिनधर्म पर शोध करनेवाले शोधार्थियों के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की

लाइब्रेरी संचालित करने हेतु श्री महावीर कुन्दकुन्द सरस्वती निलय के निर्माण में सहयोग दिया तथा अध्यात्म का अध्ययन करनेवाले छात्रों की सुविधा हेतु रत्नत्रय निलय नामक छात्रावास का निर्माण भी करवाया।

आपने श्री टोडरमल स्मारक भवन में संचालित भोजनशाला में अंशदान देकर तात्त्विक गतिविधियों का लाभ लेने के लिये अल्प शुल्क पर भोजन प्राप्त कराने में भी सहयोग दिया। साथ ही मूल आचार्यों द्वारा लिखित शास्त्र, पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन साहित्य एवं डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा सरल-सुबोध भाषा में लिखा आध्यात्मिक साहित्य अल्पमूल्य में घर-घर पहुँचे; एतदर्थ प्रकाशन विभाग में बहुमूल्य सहयोग प्रदान किया।

इसीप्रकार गुरुदेवश्री के तत्त्वज्ञान को प्रसारित करनेवाली देश-विदेश की अनेक संस्थाओं को सहयोग प्रदान कर आपने उन्हें पल्लवित और पुष्पित किया है। इत्यादिक अनेक प्रकार से मुमुक्षु समाज को आपका अमूल्य सहयोग रहा है।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो यही - मंगल कामना है।

आगामी कार्यक्रम...

फैडरेशन का 27वाँ राष्ट्रीय अधिवेशन व आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर

गुरुवार, 25 दिसम्बर से सोमवार, 29 दिसम्बर 2003 तक

दिसम्बर माह में आयोजित होनेवाला अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन का 27वाँ राष्ट्रीयअधिवेशन इस वर्ष श्री गुरुदत्त कुन्दकुन्द कहान दिग. जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट द्वारा निर्माणाधीन **सिद्धायतन में रविवार, दिनांक 28 से सोमवार, 29 दिसम्बर, तक** होगा।

अधिवेशन का आयोजन चिन्तन शिविर के रूप हो रहा है, जिसका केन्द्रबिन्दु **बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में संगठन की भूमिका, आवश्यकता व उपयोगिता** विषय पर केन्द्रित होगा।

इस अवसर पर **दिनांक 25 दिसम्बर से 29 दिसम्बर 2003** तक **पंचदिवसीय आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर** का भी आयोजन किया जा रहा है। जिसमें पण्डित उत्तमचन्दजी जैन सिवनी, पण्डित देवेन्द्रकुमारजी जैन बिजौलियाँ, पण्डित सुनीलजी शास्त्री प्रतापगढ़ आदि विद्वानों के प्रवचन एवं कक्षाओं का लाभ प्राप्त होगा। **सभी शाखाओं के कमसे कम दो प्रतिनिधियों का अधिवेशन में सम्मिलित होना आवश्यक हैं। सभी शाखाएँ अपनी-अपनी वार्षिक रिपोर्ट 15 दिसम्बर तक केन्द्रिय कार्यालय-जयपुर को अवश्य भेजें।**

आप अपने पहुँचने की पूर्व सूचना जयपुर कार्यालय या निम्नांकित पते पर अवश्य भेजें ह्न मस्ताई श्री प्रेमचन्दजी जैन, मु. पो. घुवारा, जिला - छतरपुर (म.प्र.) फोन : (07689) 255732, 255632

ह्न प्रबन्धक, अ. भा. जैन युवा फैडरेशन